P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-2* May- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

किसान जीवन की त्रासदी और आखिरी छलांग

प्रमोद कुमार प्रसाद
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग
जे0 के0 कॉलेज,
पुरुलिया

सारांश

शिवमूर्ति का कथा साहित्य आठवें–नौवें दशक की घटित घटनाओं का यथार्थ है। शिवमूर्ति के पास भारत के बुनियादी जीवन अर्थात ग्रामीण जीवन का व्यापक अनुभव है । वह अपने इसी अनुभव से कथा–साहित्य में भारत के पिछड़े और विकास के लिए प्रतीक्षारत ग्रामों की जीवंत तस्वीर उतारकर रख देते हैं। शिवमूर्ति ने अपने साहित्य में गांव के सामाजिक, आर्थिक,राजनीतिक और सांस्कृतिक यथार्थ को उसकी मूलभूत समस्याओं के साथ अंकित करते हैं। जहां कुछ भी छुटता नजर नहीं आता है । अपने बहाव में बहे मनुष्य सत्य को उद्घाटित करते चलते हैं। शिवमूर्ति ने अपने उपन्यासों में वर्तमान ग्रामीण समाज की गरीबी, शोषण, जातिवाद, विकृत राजनीति, भ्रष्टाचार, वर्ग–विषमता, अंधविश्वास, अशिक्षा, नारी–शोषण, किसान– शोषण से लेकर कोर्ट–कचहरी, कानूनगों आदि ऐसे अनेक समस्याओं को उभार देते हुए अपने ईमानदार लेखन का परिचय देते हैं ।

मुख्य शब्द : बाजारवाद , किसान , अशिक्षा , जातिवाद ,संघर्ष, आत्महत्या ।

प्रस्तावना

प्रेमचंद पूर्व युग से अब तक के कथा–साहित्य ने एक लंबी यात्रा तय की है। प्रेमचंद पूर्व युग में यथार्थता की प्रधानता रही,तो समकालीन दौर में व्यक्ति को महत्व दिया गया । जिसमें व्यक्ति के माध्यम से ग्रामीण जन–जीवन को जानने व समझने का मौका मिला। जिसमें प्रेमचंद, नागार्जुन, रेणु ,भैरव प्रसाद गुप्त, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, केदारनाथ सिंह से होते हुए शिवमूर्ति के साहित्य तक की विशेष प्रसिद्धि रही है । जो गांव की मानव चेतना के साथ किसानों की समस्या को समग्रता में व्यक्त करने में सक्षम रहा है । शिवमूर्ति के कथा–साहित्य से वर्तमानबोध के गाँवों की गहरी शिनाख्त आसान हो गई है। ऐसे में हम वहाँ की व्यापक समस्याओं की परिचिति के साथ आशावान तथा निदान की भी कल्पना कर सकते हैं ।

अध्ययन का उद्देश्य

शिवमूर्ति का 'आखिरी छलांग' वर्ष 2008 (नया ज्ञानोदय अंक जनवरी) में प्रकाशित तीसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है । जिसकी पृष्ठभूमि अवध का ग्रामांचल है। किसान जीवन और ग्रामीण समाज की कारूणिक यथार्थ पर केंद्रित यह उपन्यास गाँवों की वर्तमान वास्तविक दुर्दशा का जीवंत दस्तावेज है । उपन्यास में व्याप्त समस्या गांव–शहर की ही नहीं बल्कि पूरे भारतीय समाज के साथ अंतर्राष्ट्रीय है । भारतीय गाँवों में मजदूरी, अशिक्षा, दहेज और जातिवाद के साथ खाद, बीज, पानी, नहर–रेट, कर्ज की समस्याएँ पूरे किसान बिरादरी के लिए यथार्थता के परिप्रेक्ष्य में नयी नहीं है। कल और आज में अंतर बस विकास नीतियों के धालमेल के आधार पर ग्रामीण आमजन को ठगा जाना रहा है। वर्तमान दौर में नव–उदारवाद, मुक्तपूंजी ,बाजारवाद और भूमंडलीकरण ने भारत को ही नहीं अलबत्ता समूचे दुनिया के गाँवों और शहरों को अपनी चपेट में ले रखा है । इसमें किसान भला मुक्त कैसे रह सकता है । उपन्यास में यही केंद्रीय उदेश्य बन उभरा है ।

सहित्यावलोकन

वर्तमान बदलते गाँवों की सूरत में यह तो कतई संभव नहीं है कि सिर्फ किसानी कर्म करके पूरे परिवार के सपनों को पूर्ण किया जा सके । कारण आज के समय में हल–बैल, बछड़े गायब हो चुके हैं । आज 21वीं सदी के दिन हैं । इनकी जगह पर आज ट्रैक्टर, थ्रेसर ने अपनी जगह बना ली है । जिनकी कीमत आज आसमान छू रही है । फलस्वरूप छोटे किसानों के लिए खेती करना और भी दूभर होता जा रहा है। आज पैंतालिश मिनट में एक किसान आत्महत्या करता है । भारत की साठ प्रतिशत आबादी किसानों की है और आज किसानों के माथे पर किसी का हाथ नहीं है । पूंजीपति तथा सरकारी योजनाओं के द्वारा भारतीय किसानों को आत्महत्या से रोकने के लिए कौन से उपाय किए गये हैं ?

इस कथा के द्वारा इस विषय पर आज विचार करना आवश्यक है। विकास के नाम पर सरकारी,राजनीतिज्ञों का कहीं यह वोट का अखाड़ा तो नहीं है । इससे उबरना होगा नहीं तो एक दिन किसान देश के मानचित्र से गायब हो जायेंगे तथा अर्थव्यवस्था के नाम पर भारत का नामोनिशान दूसरे नंबर से भी हट जायेगा। शिवमूर्ति के इस उपन्यास को केंद्र में रखकर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में कोई नई समीक्षा निकल कर नहीं आयी है। इस दृष्टी से यह शोध आलेख अपने समय के किसानों की यथार्थता को अभिव्यंजित करता है ।

शिवमूर्ति वर्तमान ग्रामीण स्वरूप के बदलते हुए यथार्थ को उपन्यास में चित्रित किया है। वह किसानों, मजदूरों, दलितों, स्त्रियों के संघर्षरत जीवन को कथानक बनाने वाले सभी कथाकारों से भिन्न भी है । उपन्यासकार इस उपन्यास की कथा पहलवान के जीवन से आरंभ करता है। जिन्हें अखाड़े, कुश्ती में महारत हासिल नहीं है बल्कि उन्हें आलू उत्पादन में 'कृषि रत्न' का सम्मान मिला है। वह पांच–छः एकड़ के जोरदार सामंती किसान हैं। गांव में उनका सम्मान है।"पर इधर कुछ दिनों से पहलवान को एक–एक करके इतने 'झोड़' लगे कि उनकी एक ढ़र्रे पर चले वाली आत्मतुष्ट दिनचर्या में खलल साफ दिखने लगा है। कितने दिन हो गये सगरे में नहाये। अब अपने दरवाजे के कुएँ से ही दो चार लोटे पानी दाये–बाये डालकर नहान करने लगे हैं।"[1] समय और परिस्थितियाँ पहलवान के ऊपर अपना प्रभाव छोड़ने लगी है। वह सोचते हैं कि –" सयानी बेटी के लिए दो साल से वर खोज रहे हैं लेकिन कहीं कामयाबी नहीं मिली। पिछले साल तो किसी तरह बेटे की इंजीनियरिंग की फीस भर दी गई । इस साल कोई रास्ता नहीं दिखता। तीन साल हो गये गन्ने का बकाया अभी तक नहीं मिला । सोसायटी से ली गई खाद का कर्ज न चुका पाने के चलते पिछले साल पकड़ लिए गये थे।"[2] इस सामंती किसान की सोच में बदलाव आने लगा है। खेत बेचकर बेटे के इंजीनियरिंग की पढ़ाई करायें या फिर अतिरिक्त दहेज देकर बेटी व्याह करें। यह दोनों चीजें वर्तमान समय में तीव्र से तीव्रतर हुई है। ऐसे में पहलवान का चिंताग्रस्त होना स्वाभविक है । यहाँ खास बात यह है कि यदि भारतीय गाँवों में पहलवान जैसे बड़े किसानों की यह स्थिति है तो छोटे किसानों का क्या हस्र होता होगा, उपन्यास की कथा में यह विचारणीय बिंदु है। "आज किसानों के समक्ष अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी एवं आत्महत्या जैसी अनेक समस्याएं मुँह बाये खड़ी हैं । देश की लगभग आधी फीसदी से ज्यादा आबादी सरकार और समाज दोनों के यहाँ हाशिए पर हैं । अगर साहित्य की बात करें तो स्वतंत्रता के बाद किसान जीवन की समस्याओं को लेकर उस लेखन के कलेवर का अभाव है जो प्रेमचंद के यहाँ दिखता है ।"[3]

इसमें कोई दो राय नहीं है कि प्रेमचंद,नागार्जुन,रेणु के समय में सामंती और जमीनदारी प्रथा थी जो किसानों को कर वसूली तथा कर्ज के नाम पर लूटती थी और आज इनकी जगह पर भूमंडलीकृत बाजारवादी सरकारी उपक्रम है जो इन्हें दोनों हाथों से लूट रहे हैं – "किसान के घर में जन्म लेकर न पहले कोई सुखी रहा है न आगे कोई सुखी रहेगा । इन्हीं परिस्थितियों में जिंदगी की नाव खेना है ।"[4] भारतीय राजनीति और अर्थव्यवस्था का पहला और आखरी शिकार भारत का आम किसान है । "जिस परिवार में बाहर से नगदी की आमदनी नहीं हैं उसका आज के जमाने में गुजर होना मुश्किल है । जैसे गड्ढ़े से खोदी गयी मिट्टी उसी गढ्ढे को भरने के लिए पूरी नहीं पड़ती वैसे ही खेती–किसानी की आमदनी खेती किसानी के खर्चे को भी नहीं अँटती । और कहाँ से अँटे ! डीजल, बिजली, खाद कीटनाशक, जोताई –मड़ाई मजूरी – सबका रेट तो हर साल दस पाँच रूपये बढ़ जाता है । नहीं बड़ता तो किसान की पैदावार का दाम। इसीलिए जितनी लंबी खेती उतना ही लंबा घटा। जितना ज्यादा पैदावार ज्यादा घाटा।"[5] यूरिया, खाद, नहर–रेट, जुताई से लेकर स्कूल कॉलेज और इंजीनियरिंग की फीसों में बढ़ोत्तरी की सीधी मार किसानों पर पड़ती है क्योंकि किसानों के लिए योजना बनाने वाले तमाम उद्योगपति हैं जिन्हें कृषि–कर्म से कोई मतलब नहीं है । उन्हें यह भी नहीं पता होता कि चने के पेड़ बड़ा होता है या अरहर का ? आलू जमीन के नीचे फलता है या ऊपर । पहलवान को ऐसा महसूस होता है कि इज्जत चली गयी खेलावन भाई । खेलावन पहलवान को समझाते हैं । "किसान पूरे देश का अन्नदाता है । वैश्वीकरण के दौर में उसकी भी स्थिति में सुधार होगा ऐसा लगा था। लेकिन आज के बाजारवादी दौर में वह हाशिए पर चला गया है । उसकी फसल सामाजिक समस्या बन गयी है। उसे अपनी फसल का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है । कर्ज की समयस्या से वह धिरा हुआ है । खाद,बिजली और पानी की समस्याएं उसे परेशान कर रही हैं । उसका कई आयामों पर शोषण हो रहा है आजादी के पहले शोषकों को किसान समझ सकता था ।लेकिन आज उसका चालाकी से शोषण किया जा रहा है । इससे शोषकों को पहचानना भी मुश्किल हुआ है ।"[6]

खेलावन को देश–दुनिया के ढेरों जानकारियाँ है । वह अपनी बातों से पहलवान को समझाने का प्रयास करते हैं। जो उपन्यास में आधुनिक दुनिया की ओर खुलने वाली खिड़की की तरह अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं । वह व्यवस्था के गुण–दोषों को जानते हैं –"धूस का रेट एक से सवा लाख के बीच में चल रहा था, लेकिन खेलावन ने जुगाड़ लगाकर सत्तर दृअस्सी हजार में ही काम बना लिया।"[7] खेलावन अपनी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अनुभवों से ग्रामीण लोगों में रोष पैदा करते हैं । वह कहते हैं –"पश्चिम के देशों में किसानों को भारी सब्सिडी दी जाती है। सस्ती दर पर खाद बिजली बीज दवा वगैरह । मैंने कहीं पढ़ा था, अमेरिका अपनी गायों को रोज चौबीस डालर की सब्सिडी देता है।"[8] उतने में हरदयाल भी कहते हैं–"निरहू–घुरहू नहीं बचेंगे तो दस–बीस साल में पूरा देश कटोरा लेकर भीख माँगता नजर आयेगा। मेरी बात गलत साबित हो जाए तो गधे के पेशाब से मूँछ छुड़वा दूँगा।"[9] यह कहीं न कहीं सामाजिक अर्थव्यवस्था से उपजा हुआ क्षोभ और रोष है जो साफ–साफ यह कह रहा है उद्योगपति सत्ता के शीर्ष पर और किसान सत्ता के पैरों के नीचे । फलतः आज के

किसानों में जागरूकता आई है उनमें आपसी शक्ति का दायरा बढ़ा है । पर यहाँ भी जातिवाद मुख्य है । जिस एकजुटता की कमी के कारण किसान कोई बड़ी लड़ाई नहीं लड़ पा रहा है । उपन्यास की कथा में जब गाँव के खिलाफ नहर काटने की रिपोर्ट लिखाई गई तो ज्यादती के खिलाफ धरना–प्रदर्शन करके ज्ञापन देने की बात तय हुई तो महज पचीस–तीस लोग इकट्ठा हुए । कारण कि प्रदर्शन का यह कार्यक्रम खेलवान जैसे पिछड़ी जाति के आदमी कर रहे थे । ऐसे में स्वर्ण अपने को इससे दूर रखना चाहते थे । पर सच तो यह है कि किसानों को स्वर्ण–अवर्ण के भेदभाव से कोसों दूर जाकर सरकारी व्यवस्था के खिलाफ व्यापक आंदोलन करना होगा तभी किसानों की मुक्ति संभव है अन्यथा पहलवान की ही बात सच साबित होगी – "पहलवान को लगता है कि इतनी पढ़ाई लिखाई करने और देश दुनिया घूमने के बाद भी गाँव का आदमी सामूहिक हित के काम के लिए एकमत होने के मुद्दे पर भी जाति–पाँति की भावना से उबर नहीं पाता ।"[10]

यह वर्तमान बदलते हुए गाँवों का बहुत बड़ा सच है कि आज के गाँव सूचना तकनीक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफी प्रगति की है पर सवर्ण–अवर्ण के नाम पर वहाँ आज भी एकजुटता की कमी है जो इन किसानों को एकबद्ध होकर लड़ने के लिए रोकती है । यह गाँवों की प्रगति के लिए शुभ नहीं है । अपने किसानी अरमानों को पाने के लिए उन्हें इस संकुचित मानसिकता से उबरना होगा नहीं तो –"नहीं लड़ेंगे तो मरेगा, मर तो रहा ही है और जल्दी मरेगा । देश–दुनिया के नक्शे से गायब हो जायेगा । कोई रोक नहीं सकता । बहुत सारे मुद्दे हैं जिनसे लड़ना जरूरी है । जैसे सरकारी नीतियां । गेहूँ पैदा करने में लागत बारह रुपया किलो आता है लेकिन गेहूं बिकता है सात रुपया किलो ,आलू और प्याज के घर पैदा होता है तो दो रुपया किलो बिकने लगता है । दो महीने बाद जैसे किसान के घर बाहर निकलता है, दस रुपया किलो हो जाता है । पिछले पैंतीस साल में जमीन सौ गुनी मँहगी हो गई । सोना पचहत्तर गुना ,डीजल पचास गुना जबकि गेहूँ सिर्फ सात गुना । सारी मंदी किसानों के लिए ही है ।"[11]

किसान आज हाशिये पर है । उसके जीवन में किसानी कर्म के साथ–साथ बेटे की ऊँची शिक्षा और बेटी के विवाह के लिए दहेज की समस्या मुँह बाये खड़ी है । उपन्यास की कथा में पहलवान जब बेटी के लिए रिश्ता देखने जाते हैं तो उन्हें निराशा हाथ लगती है । वर्तमान बाजारवादी व्यवस्था ने इन दिनों स्थितियों में किसानों की कमर तोड़ कर रख दी है । उपन्यास की कथा में –"क्या है इनके पास जो बाबूजी इस तरह लट्टू हुए जा रहे हैं । न कोई कोटा परिमिट न कोई कॉलेज भट्ठा , न टरक ट्रैक्टर न कोई ठेका पट्टा । कहाँ से सँभालेंगे हमारी हजार लोगों की बारात ? शादी का बजट कितना है ? कौन सी गाड़ी देंगे ? साफ–साफ बात होनी चाहिए ।"[12] वह आज से दहेज परंपरा का जीवंन प्रमाण है जहाँ लोग मुंह खोलकर अपनी माँगे मनवा रहे हैं जिसमें उन्हें दूसरे के आर्थिक मनःस्थिति का ख्याल रखना जरूरी नहीं पड़ता है । पहलवान अपनी बेटी के लिए इसी दहेज की समस्या से चिंतित है । वही बेटे को इंजीनियरिंग की पढ़ाई में उनके सारे खेत मानो हाथ से निकल जायेंगे तभी उसकी पढ़ाई संभव है । पहलवान का चिंतित होना लाजिमी है – "उनके जैसे चार एकड़ की जोत वाला किसान अगर साल की दोनों फसलों की कुल पैदावार बेच दे तो भी खाद, बीज सिंचाई, मजदूरी खर्च घटाने के बाद भी कुछ हाथ लगेगा उससे एक साल की फीस का इंतजाम होना मुश्किल है । चार साल तक इस तरह की फीस भरिये तब कहीं बेटा इंजीनियर कहलाने लायक होगा ।"[13] शिवमूर्ति के जीवन में किसानी कर्म का यह व्यापक अनुभव कोश है जो बदलते हुए दौर में किसानों की कथा को उसी रूप में सृजित करते हैं । गाँव की ऐसी जबरजस्त पकड़ प्रेमचंद और रेणु के लेखन को भी कभी–कभी असमंजस में खड़ा कर देती है । शिवमूर्ति की सबसे बड़ी खासियत यह है कि वह अपनी कथा में पूरे गाँव के यथार्थ को ला खड़ा कर देते हैं बिना किसी लाग–लपेट के तथा वहाँ का यथार्थ और मुखरित रूप में अभिव्यंजित हो पड़ता है ।

शिवमूर्ति ग्रामीण अंध–विश्वास को भी कथा में लाते हैं जो बदलाव की प्रक्रिया में गाँव से गायब होने का नाम ही नहीं ले रहा है । पहलवान जानता है कि – "सचमुच क्या है किसान की जिंदगी ? एक कोना ढकिये तो दूसरा उधार हो जाता है ।"[14] दलिद्र के प्रतिक पुराने सूप का हाथ– पैर तोड़कर उसे ऐसे गहरे गड्ढे में फेंकना है जहाँ से वह वापस न लौट सके । "इस्सर आवै, दलिहर जावै ।"[15] कोई राह नहीं इस दुष्चक्र से बाहर निकलने की । पहलवान के सपनों में पांडे बाबा कर हाथ बढ़ा रहे हैं –"मृत्यु लोक के भ्रम जाल में क्यों पड़े हो बच्चा ? छोड़ो सारा बैंडंड । हमारे पास आ जाओ ।"[16]

उपन्यास के अंत में पहलवान चिताओं से अपने को मुक्त करते हैं । लेकिन यह छलांग जीवन के बाहर और मृत्यु के भीतर की छलांग नहीं है । इस छलांग की प्रेरणा पांडे बाबा की बरसी पर आयोजित जनसभा से मिलती है । पहलवान में बरखी के दिन वाले नेताजी के भाषण से बदलाव आता है । घर वापसी के क्रम मे – "उन्हें लगता है कि उसके साथ उन्चासों पवन दौड़ पड़े हैं । मुंडे से हुमककर हवा में छलांग लगाते हैं तो उन्हें लंका के लिए छलांग लगाते हनुमान जी की याद आ जाती हैं ।"[17] निस्संदेह पहलवान बेटी के व्याह की चिंता, बेटे के फीस की चिंता , ट्यूबेल के बिल की चिंता इन सब को दरकिनार कर यह मौत के खिलाफ लगाई गई छलांग है, "आखिरी छलांग" ।

निष्कर्ष

अंततः हम यह कह सकते हैं कि भारत के गाँवों पर आधारित उपन्यासों को यदि जानना है तो वर्तमान समय में शिवमूर्ति से बेहतर ग्रामीण यथार्थवादी दूसरा कोई और उपन्यासकार हमें अभी नहीं मिलेगा । जिन्होंने गाँव के प्रत्येक स्पंदन को उसी के अंदाज में अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है ,जैसा कि वह जी रहा है । शिवमूर्ति इसीलिए आज विशिष्ट रचनाकार है । जिसमें करवट लेते गाँवों को देखा व परखा जा सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 75
2. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 75
3. *ww-apnimaati-com/*2017/11/*blog&post_*91-*html*
4. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 83
5. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय , भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 79
6. *www-apnimaati-com/*2017/11/*blog&post_*91-*html*
7. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 90
8. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 83&84
9. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 84
10. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 77
11. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 90
12. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 84
13. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 89
14. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 90
15. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 90
16. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 106
17. *शिवमूर्ति ,आखरी छलांग ,नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली , अंक जनवरी* –2008 *पृष्ठ सं.* 107